सूचना के अधिकार के लिए अंतहीन संघर्ष

माधव गोडबोले

सालों की कवायद के बाद केन्द्र सरकार ने 25 जुलाई 2000 को सूचना की स्वतंत्रता का विधेयक सदन में पेश कर दिया। यह एक उपलब्धि माना जा सकता है क्योंकि गत पांच सालों में संयुक्त मोर्चा की दो सरकारें भी इस विधेयक को सदन में नहीं रख पाई थीं। भाजपा व उसके सहयोगी दलों ने विधेयक को सदन में रख तो दिया है पर इसको सदन में पारित करवाना उसके लिए मशक्कत भरा काम होगा। इस विधेयक में अब भी काफी पेंच हैं जिन्हें दुरुस्त करके ही विधेयक के उद्देश्यों पर खरा उतरा जा सकता है।

सर्वप्रथम तो इस विधेयक का शीर्षक ही संदेहास्पद है। हम जानते हैं कि सूचना का अधिकार मौलिक अधिकार है। संसद में पेश किए गए इस विधेयक के साथ जो उद्देश्य और कारण पक्ष संलग्न हैं उसमें कहा गया है कि यह विधेयक संविधान के अनुच्छेद 19 एवं मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद 19 के अनुरूप है। इसलिए इस विधेयक को मात्र सूचना की स्वतंत्रता तक सीमित रखने का कोई औचित्य नहीं है जो स्वयं सरकारी तंत्र की सनक पर निर्भर है। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को कोई भी अधिनियम कमतर नहीं कर सकता।

दरअसल इस विधेयक का उद्देश्य संविधान द्वारा प्रदत्त सूचना के अधिकार को कार्य रूप में परिणत करना होना चाहिए। सूचना की स्वतंत्रता का नाम देने से विधेयक का उद्देश्य सीमित हो जाता है। इसीलिए इस विधेयक को सूचना की स्वतंत्रता 2000 की बजाय सूचना का अधिकार 2000 कहा जाना ज़्यादा उपयुक्त होगा।

विधेयक के उद्देश्य पत्र के पांचवें अनुच्छेद में कहा गया है कि यह कानून स्थिर, ईमानदार, पारदर्शी व समर्थ सरकार के उद्देश्य के अनुरूप होगा। लेकिन यहां यह स्पष्ट नहीं है कि इस कानून से सरकार की स्थिरता का क्या सम्बंध है। इसलिए उद्देश्य पत्र के अनुच्छेद 5 में उल्लेखित 'stable' वाली पंक्ति को हटाया जा सकता है।

दरअसल सूचना की स्वतंत्रता विधेयक का उद्देश्य संविधान द्वारा प्रदत्त सूचना के अधिकार को कार्य रूप में परिणत करना होना चाहिए। सूचना की स्वतंत्रता का नाम देने से विधेयक का उद्देश्य सीमित हो जाता है। इसीलिए इस विधेयक को सूचना की स्वतंत्रता 2000 की बजाय सूचना का अधिकार 2000 कहा जाना ज़्यादा उपयुक्त होगा।

कानून कहां लागू होगा

इस विधेयक के बारे में अगला सवाल यह है कि यह कानून आखिर लागू कहां होगा। आदर्श स्थिति में इसे सरकारी क्षेत्रों के साथ-साथ समाज के तमाम क्षेत्रों पर लागू होना चाहिए। इस विधेयक के लागू होने का दायरा सिर्फ सरकारी क्षेत्र तक ही सीमित है, जबकि इस कानून की परिधि में निजी क्षेत्रों, पंजीकृत संस्थानों, ट्रेड यूनियनों, धर्मार्थ व अन्य ट्रस्टों तथा केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा पंजीकृत अन्य तमाम संगठनों को भी लाया जाना चाहिए। ऐसा इसलिए कि एक नागरिक के सूचना के अधिकार को इन तमाम इकाइयों के संदर्भ में लागू किए जाने की ज़रूरत होती है। आज जिस तेज़ी से निजी क्षेत्र का दायरा बढ़ रहा है और सरकारी क्षेत्रों में कटौती होते जाने का खतरा मण्डरा रहा है, उसे देखते हुए तो यह खास तौर पर प्रासंगिक हो जाता है। लोगों की परेशानियों के प्रति गैर जवाबदेही और असंवेदनशीलता का व्यवहार दर्शाने वाली एक सिर्फ सरकारी नौकरशाही ही नहीं है, निजी क्षेत्र भी इनके कंधों से कंधा मिलाकर चल रहे हैं। इसलिए सरकार के साथ-साथ गैर सरकारी संगठनों से भी पारदर्शिता व जवाबदारी की अपेक्षा की जानी चाहिए।

इस विधेयक की प्रस्तावना में कहा गया है कि सूचना की स्वतंत्रता जन हित के पक्ष में होगी। लेकिन जनहित को परिभाषित करने का काम सरकार पर छोड़ दिया जाना खतरनाक साबित हो सकता है। और फिर सरकार को जनहित तय करने का काम सौंपा भी क्यों जाए? यह सरकार ही है जो जिस जानकारी को नहीं देना चाहेगी उसे सार्वजनिक हित की आड़ लेकर गोपनीय बना देती है और इस कदम की वकालत भी करती है। सूचना के

अधिकार को एक बार मौलिक अधिकार मान लिए जाने के बाद उसका जनहित में होने न होने का अर्थ ही नहीं रह जाता। इसलिए प्रस्तावना में उल्लेखित 'जनहित के अनुरूप' होने की बात को हटाया जा सकता है।

जबरन क्रियान्वयन

इस विषय को कानूनी रूप देने में आ रहे प्रतिरोधों को देखते हुए यह सुनिश्चित करना ज़रूरी हो जाता है कि संसद द्वारा पारित कर दिए जाने के बाद उसे तुरन्त और ज़बरदस्ती लागू किया जाएगा। पूर्व में पारित हुए प्रसार भारती विधेयक, दिल्ली किराया नियंत्रण विधेयक आदि को लागू करने के लिए अपेक्षित गजट अधिसूचना जारी करने में अनावश्यक विलंब हुआ। इसलिए सूचना की स्वतंत्रता विधेयक के परिच्छेद 5 (3) के अनुसार यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि विधेयक पारित होने के 3 माह के भीतर इसे लागू कर दिया जाएगा।

विधेयक के परिच्छेद 3 में कहा गया है कि यह कानून सभी लोगों पर लागू होगा और उन्हें सूचना की स्वतंत्रता रहेगी। लेकिन ये पक्तियां निरर्थक सी लगती हैं क्योंकि हमें मालूम ही है कि सूचना का अधिकार हमारा मौलिक अधिकार है और इसीलिए सूचना की स्वतंत्रता का अलग से उल्लेख करना ज़रूरी नहीं है। इसकी बजाय यह बताना ज़्यादा अहम है कि सूचना के अधिकार की संवैधानिक पवित्रता कैसे बरकरार रहेगी व यह अधिकार के रूप में कैसे लागू होगा।

विधेयक के परिच्छेद 4 में सरकारी अधिकारियों द्वारा समय-समय पर स्वप्रेरणा से सूचनाएं देने की जवाबदारी का उल्लेख है। यदि मंत्रालय द्वारा बनाए गए पूर्व ड्राफ्ट से इसकी तुलना की जाए तो यह प्रावधान काफी सीमित-सा है। इसलिए इस प्रावधान को और अधिक उदार किए जाने की आवश्यकता है ताकि विभिन्न दफ्तर जनसामान्य के साथ अपने सम्बंध के आधार पर स्वप्रेरणा से अतिरिक्त जानकारियां समय-समय पर देने में स्वतंत्र हों। कुल मिलाकर इस प्रावधान का उद्देश्य यह है कि लोग अपनी आवश्यकतानुसार सरकारी दफतरों से जानकारी प्राप्त कर सकें।

परिच्छेद 4(e) में आम आदमी को प्रभावित करने वाली या कर सकने वाली प्रस्तावित परियोजनाओं की सूचना या जानकारियां उन तक मुहैया किए जाने का उल्लेख है। कहा गया है कि 'लोकतांत्रिक सिद्धांतों के संरक्षण के लिए यह आवश्यक भी है'। इसे बदलकर 'लोकतांत्रिक सिद्धांतों और प्राकृतिक न्याय को प्रोत्साहन देने के लिए यह आवश्यक भी है' करने का सुझाव है।

परिच्छेद 6 में एक नए प्रावधान का उल्लेख है जिसके तहत इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के ज़रिए सूचना मांगे जाने का उल्लेख है। इसके तहत जहां सम्भव हो वहां जवाब तथा आवेदक द्वारा देय फीस भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा भेजी जा सकती है। इससे सूचना मांगने-पहुंचाने की प्रक्रिया में समय व श्रम दोनों की बचत होगी।

परिच्छेद 8 में सूचनाओं की गोपनीयता बनाए रखने वाले अपवादों का ज़िक्र है। ये अपवाद उपवाक्य a से लेकर उपवाक्य g तक हैं। परिच्छेद के अधिकतर उपवाक्यों में भी कई-कई अपवाद हैं। ये अपवाद कई जानकारियों एवं सूचनाओं की गोपनीयता बनाए रखते हैं। इसका असर जानने के लिए इन अपवादों पर बहस व विश्लेषण की आवश्यकता हैं। उदाहरण के लिए 8 a में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों के नाम पर गोपनीयता बनाए रखने की बात कही गई है। लेकिन हमारा अनुभव बताता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों में अत्यधिक गोपनीयता राष्ट्रहित में नहीं होती। इंदिरा एवं राजीव गांधी के समय श्रीलंका में हस्तक्षेप के कड़वे अनुभव अभी हम भुला नहीं पाए हैं। इसी तरह 8 c में केन्द्र राज्य के सम्बंधों के नाम पर कुछ गोपनीयताएं बनाए रखने का ज़िक्र है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि इस प्रावधान के अंतर्गत किस प्रकार की सूचनाएं जनता को नहीं बताई जा सकेंगी। संघात्मक

इस विधेयक की प्रस्तावना में कहा गया है कि सूचना की स्वतंत्रता जनहित के पक्ष में होगी। लेकिन जनहित को परिभाषित करने का काम सरकार पर छोड़ दिया जाना खतरनाक साबित हो सकता है। और फिर सरकार को जनहित तय करने का काम सौंपा भी क्यों जाए? यह सरकार ही है जो जिस जानकारी को नहीं देना चाहेगी उसे सार्वजनिक हित की आड़ लेकर गोपनीय बना देती है और इस कदम की वकालत भी करती है। सूचना के अधिकार को एक बार मौलिक अधिकार मान लिए जाने के बाद उसका जनहित में होने न होने का अर्थ ही नहीं रह जाता।

परिच्छेद 8f में वाणिज्य सम्बंधित मामलों में गोपनीयता बरतने का ज़िक्र है। इस तरह की गोपनीयता के चलते ही महाराष्ट्र व एनरॉन के बीच हुए बिजली सौदों से लोगों को दूर रखा गया। और जब यह जगत ज़ाहिर हुआ तब पता चला कि यह आने वाली कई पीढ़ियों के लिए परेशानी का सबब बन चुका है। यदि वाणिज्य सम्बंधी मसलों में गोपनीयता बरती जाती है तो यह देश के लिए खतरनाक होगा क्योंकि अंततः वाणिज्य निर्णयों का सम्बंध जनता से ही होता है और वह इनसे अनभिज्ञ रहेगी।

ढांचे वाले हमारे देश में केन्द्र व राज्य सम्बंधों के नाम पर गोपनीयताएं बनाकर रखना खेदजनक है।

परिच्छेद 8d और 8e में केबिनेट सम्बंधी कागज़ात, फाइलों पर टिप्पणियां, मंत्रियों एवं अधिकारियों की सलाह आदि की गोपनीयताओं का ज़िक्र है। मंत्रिमंडल के निर्णय सम्बंधी मामलों में इस प्रकार की गोपनीयता बरतने का कोई मतलब नहीं है। लोगों को यह मालूम होना चाहिए कि कोई निर्णय किस आधार पर लिया गया है। इस तरह की गोपनीयताओं से सूचना की स्वतंत्रता व सूचना के अधिकार की भावना को ठेस पहुंचती है।

इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि नौकरशाही में सामान्यतः दो तरह के अफसर होते हैं। एक तरह के अफसर अपने निर्णयों, सलाहों व टिप्पणियों को बिना डरे जनता के समक्ष रखना चाहते हैं। पर दूसरी तरह के अफसर इस तरह के वक्तव्य देने से पहले उसमें निहित राजनीति को देखते हैं, साथ ही उन्हें उनकी राय के सार्वजनिक होने का डर भी होता है। यदि प्रशासन को वाकई जवाबदेह व पारदर्शी बनाना है तो कानून को बिला वजह की गोपनीयताओं से परे रखना होगा। दरअसल नौकरशाही को भी (विभिन्न कारणों से) राजनैतिक कुलीन चलाते हैं और उनके लिए गोपनीयता राजकाज चलाने में मददगार होती है।

परिच्छेद 8f में वाणिज्य सम्बंधित मामलों में गोपनीयता बरतने का ज़िक्र है। इस तरह की गोपनीयता के चलते ही महाराष्ट्र व एनरॉन के बीच हुए बिजली सौदों से लोगों को दूर रखा गया। और जब यह जगत ज़ाहिर हुआ तब पता चला कि यह आने वाली कई पीढ़ियों के लिए परेशानी का सबब बन चुका है। यदि वाणिज्य सम्बंधी मसलों में गोपनीयता बरती जाती है तो यह देश के लिए खतरनाक होगा क्योंकि अंततः वाणिज्य निर्णयों का सम्बंध जनता से ही होता है और वह इनसे अनभिज्ञ रहेगी। इसलिए गोपनीयता वाले तमाम मामलों में मुख्य सरोकार राष्ट्रीय व जनहितों की सुरक्षा होनी चाहिए। इस सिलसिले में हमें पूर्व अनुभवों की ओर ज़रूर देखना चाहिए। विधेयक में प्रस्तावित अपवादों को उपरोक्त रोशनी में फिर से देखे जाने की ज़रूरत है। इसके मूल उद्देश्य को अक्षत रखते हुए इसमें बदलाव भी किए जाने चाहिए। इस विधेयक में यह भी प्रस्ताव होना चाहिए कि कोई भी ऐसी सूचना जिसे संसद या विधानसभा में प्रस्तुत करने से इंकार नहीं किया जा सकता, उसे इस प्रस्ताव के तहत किसी को भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

नया प्रावधान

परिच्छेद 8(2) में 25 वर्ष पूर्व की घटना, कार्यवाही के बारे में चाही गई जानकारी से सम्बंधित नए प्रावधान का उल्लेख है। इस प्रावधान के तहत परिच्छेद 6 के प्रावधानों के अनुसार चाही गई 25 वर्ष पूर्व की घटना से सम्बंधित जानकारी इसी खण्ड के अनुसार दी जा सकेगी। इस तरह यह प्रावधान 25 साल की अवधि के लिए जानकारियों व कागज़ातों को गोपनीयता के दायरे से बाहर कर देता है।

हमारा सुझाव है कि 25 साल की अवधि को कम करके 20 साल कर देना चाहिए। दूसरा यह कि गोपनीय कागज़ातों की हर पांच साल में समीक्षा हो और इन्हें सार्वजनिक रूप से जारी भी कर दिया जाए ताकि इन्हें लम्बे समय तक न रखना पड़े। तीसरा संशोधन यह कि एक रिकॉर्ड आयोग होना चाहिए जिसमें मशहूर सार्वजनिक व्यक्तित्व, अकादमियों व सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों को शामिल किया जाए। ये लोग ऐसे मामलों की समीक्षा करें। इस सम्बंध में आयोग द्वारा किया गया निर्णय अंतिम होगा। इसमें अपवाद सिर्फ यही हो सकता है कि सम्बंधित विषय का मंत्री इसे अमान्य कर दे। और इस हेतु वे कोई ठोस कारण पेश करें जिसे दर्ज किया जा सके। चौथा यह कि इस उपखण्ड के प्रतिबंधों के तहत सरकार द्वारा अपने पास रखे तमाम अधिकार रिकॉर्ड आयोग को हस्तांतरित किए जाएं।

परिच्छेद 9 में उन कारणों का ज़िक्र है जिसके आधार पर कुछ मामलों में सूचना दिए जाने की प्रार्थना या अर्ज़ी को खारिज किया जा सकता है। उप परिच्छेद d इस प्रकार की सूचनाओं से सम्बंधित है जो किसी व्यक्ति की निजता से जुड़ी हैं। इस परिप्रेक्ष्य में खण्ड 11 के उपबन्ध का संदर्भ लिया जा सकता है जो कहता है कि ''कानून द्वारा संरक्षित व्यापार और वाणिज्य की गोपनीयताओं के अलावा अगर किसी सूचना को जनहित में जारी करने का महत्व किसी तीसरे पक्ष के सम्भावित नुकसान या उसके हितों पर आघात से ज़्यादा हो तो उस सूचना को ज़ाहिर किया जा सकता है।'' यह सुनिश्चित करने के लिए कि जनहित के साथ समझौता नहीं किया गया है खण्ड 9 में इसी तरह का उपबंध शामिल किए जाने की ज़रूरत है।

अनुच्छेद 11 तीसरी पार्टी की सूचना से सम्बंधित है। इस परिच्छेद में सूचना से प्रभावित होने वाली तीसरी पार्टी के प्रतिनिधि को बुलाए जाने का प्रावधान है। इसमें तीसरी पार्टी को सूचना देने में 50 दिन का समय दिया गया है जिसे कम करके 30 दिन किया जाना चाहिए।

परिच्छेद 12 में अपील की व्यवस्था है। लेकिन ये अपीलें अलग के बने ट्राइब्यूनलों में की जा सकेंगी। अपीलकर्ता को अपील करने के लिए राज्य मुख्यालय आना पड़ेगा जो अव्यावहारिक है।

परिच्छेद 14 में कहा गया है कि, ''सरकारी गोपनीयता कानून, 1923 और अन्य सभी कानूनों के विधान जहां भी इस सूचना की स्वतंत्रता के विधान से मेल नहीं खाते वहां इन्हें जारी नहीं रखा जा सकता।'' यहां 'अन्य सभी कानूनों' के साथ 'नियम और मैन्युअल' शब्द जोड़ा जाना ज़रूरी है ताकि अगर सूचना की स्वतंत्रता के विधान के प्रतिकूल जाने वाले नियमों और मैन्युअल में संशोधन करने में सरकार की तरफ से देरी होती है तो इस नए एक्ट के प्रभाव में आते ही पुराने विधान प्रभावहीन हो जाएंगे।

परिच्छेद 15 के अनुसार इस कानून के सम्बंध में की गई अपील पर सामान्य कोर्ट कोई सुनवाई या सवाल नहीं कर सकेगा। अर्थात् नागरिक सिर्फ हाई कोर्ट में ही याचिका दायर कर सकेंगे, जो उन्हें काफी महंगा पड़ेगा। ऐसे मामलों में सामान्य कोर्ट को भी निर्णय करने का प्रावधान रखा जाना चाहिए। कानून का अपना एक तंत्र होता है और उस लिहाज़ से वह मुकदमा दायर कर सकता है। इसलिए परिच्छेद 15 को इस विधेयक से हटा देना चाहिए।

शौरी कमेटी ने इस विधेयक के निर्माण के दौरान हर राज्य व केन्द्र में सूचना परिषदों की स्थापना के प्रावधान का उल्लेख किया था ताकि इस कानून के लागू होने पर नज़र रखी जा सके। लेकिन इस प्रावधान को विधेयक से निकाल दिया गया है। इसलिए अब इस कानून के लागू होने की समीक्षा करने का कोई संस्थागत ढांचा व तंत्र नहीं होगा। यह तो एक कदम पीछे हटना हुआ। ऐसी परिषदों की न केवल राज्य व केन्द्र बल्कि ज़िला स्तर पर भी आवश्यकता है ताकि इस एक्ट का क्रियान्वयन तीव्रगति से हो सके।

उल्लेखनीय है कि इस विधेयक पर गत 5 सालों से सदन में बहस चली। इस दौरान सरकारें आईं व गईं। संयुक्त मोर्चा व भाजपा की सरकार आई पर इस विधेयक का आधारभूत ढांचा व चरित्र नहीं बदला। इस दौरान राज्य सरकारों में भी फेरबदल हुआ पर इनका चरित्र नहीं बदला। यह एक व्याकुल करने वाली बात है कि शासन के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में नौकरशाही और शासन कर रही तमाम पार्टियों के विचार एक ही बिन्दु पर आकर थमते हैं - और वह बिन्दु आम आदमी को सशक्त करने के विरुद्ध जाता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

उल्लेखनीय है कि इस विधेयक पर गत 5 सालों से सदन में बहस चली। इस दौरान सरकारें आईं व गईं। संयुक्त मोर्चा व भाजपा की सरकार आई पर इस विधेयक का आधारभूत ढांचा व चरित्र नहीं बदला। इस दौरान राज्य सरकारों में भी फेरबदल हुआ पर इनका चरित्र नहीं बदला। यह एक व्याकुल करने वाली बात है कि शासन के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में नौकरशाही और शासन कर रही तमाम पार्टियों के विचार एक ही बिन्दु पर आकर थमते हैं - और वह बिन्दु आम आदमी को सशक्त करने के विरुद्ध जाता है।

माधव गोडबोले का लेख इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली पत्रिका से लिया गया है। अनुवाद अभय नेमा